गोरा

अध्याय 5

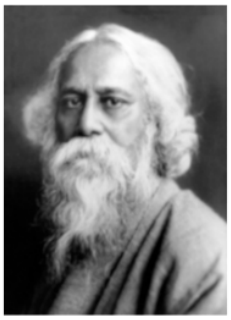

https://www.hindiadda.com/gora-part-v/

रात को घर लौटकर गोरा अंधेरी छत पर व्यर्थ चक्कर काटने लगा। उसे अपने ऊपर क्रोध आया। रविवार उसने क्यों ऐसे बेकार बीत जाने दिया! एक व्यक्ति के स्नेह के लिए दुनिया के और सब काम बिगाड़ने तो गोरा इस दुनिया में नहीं आया। विनय जिस रास्ते पर जा रहा है उससे उसे खींचते रहने की चेष्टा करना केवल समय नष्ट करना और अपने मन को तकलीफ देना है। इसलिए जीवन उद्देश्य के पथ पर विनय से यहीं अलग हो जाना होगा। जीवन में गोरा का एक ही मित्र है, उसी को छोड़कर वह अपने धर्म के प्रति अपनी सच्चाई प्रमाणित करेगा! ज़ोर से हाथ झटकर गोरा ने मानो विनय के साहचर्य को अपने चारों ओर से दूर हटा दिया।

तभी छत पर पहुँचकर महिम हाँफते हुए बोले, "इंसान को अगर पंख नहीं मिले तो तिमंज़िले मकान क्यों बनवाए? ज़मीन पर चलने वाला मनुष्य आसमान में रहने की कोशिश करे तो आकाशचारी देवता इसे कैसे सहेंगे?.... विनय के पास गए थे?"

इसका गोरा ने सीधा जवाब न देते हुए कहा, "विनय के साथ शशिमुखी का ब्याह नहीं हो सकेगा।"

महिम, "क्यों? क्या विनय की मर्ज़ी नहीं?"

गोरा, "मेरी मर्ज़ी नहीं है।"

हाथ नचाकर महिम ने कहा, "वाह! यह एक नया फसाद खड़ा हुआ। तुम्हारी मर्ज़ी नहीं है! वजह क्या है, ज़रा सुनूँ?"

गोरा, "मैंने अच्छी तरह समझ लिया है कि विनय के लिए हमारे समाज में बने रहना मुश्किल होगा। उसके साथ हमारे घर की लड़की का विवाह नहीं हो सकता।"

महिम, "मैंने बहुत हिंदूपना देखा है, लेकिन ऐसा तो कभी नहीं देखा! तुम तो काशी-भाटपाड़ा से भी आगे बढ़ गए! तुम तो भविष्य देखकर विधान देते हो! किसी दिन मुझे भी कहोगे, सपने में देखा कि तुम ख्रिस्तान हो गए हो, गोबर खाकर फिर जात में आना होगा!"

काफी बक-बक कर लेने के बाद महिम ने फिर कहा, "लड़की को किसी मूर्ख के गले तो बाँध नहीं सकता। और जो पढ़ा-लिखा लड़का होगा,समझदार होगा, तो बीच-बीच में शास्त्र का उल्लंघन करेगा ही। इसके लिए उसमें बहस करो, उसे गाली दो; किंतु

ब्याह रोककर बीच में मेरी लड़की को सज़ा क्यों देते हो? तुम हर बात उलटी ही सोचते हो!"

महिम ने नीचे उतरकर आनंदमई से कहा, "माँ, अपने गोरा को तुम सँभालो!"

घबराकर आनंदमई ने पूछा, "क्या हुआ?"

महिम, "शशिमुखी के साथ विनय के ब्याह की बात एक तरह से मैं पक्की करके आया था। गोरा को भी राज़ी कर लिया था, इस बीच गोरा ने अच्छी तरह समझ लिया है कि विनय में उसके जैसा हिंदूपन नहीं है- मनु-पराशर की राय से उसकी राय कभी थोड़ी उन्नीस-बीस हो जाती है। इसीलिए गोरा अड़ गया है-अड़ने पर वह कैसा अड़ता है, यह तुम जानती ही हो। कलियुग के जनक ने अगर प्रण किया होता कि जो टेढ़े गोरा को सीधा करेगा उसी को सीता देंगे, तो श्री रामचंद्र क्वाँरे ही रह जाते, यह मैं शर्त लगाकर कह सकता हूँ। मनु-पराशर के बाद इस दुनिया में वह एक तुम्हीं को मानता है- अब तुम्हीं अकर उबारों तो लड़की का कल्याण हो सकता है। ढूँढ़ने पर भी ऐसा पात्र नहीं मिलेगा।"

छत पर गोरा के साथ जो कुछ बातचीत हुई थी, महिम ने उसका पूरा खुलासा सुना दिया। विनय से गोरा का विरोध और गहरा हो गया है, यह जानकर आनंदमई का मन अत्यंम उद्विग्न हो उठा।

ऊपर आकर आनंदमई ने देखा, गोरा छत पर टहलना छोड़कर कमरे में एक कुर्सी पर जा बैठा है और दूसरी कुर्सी पर पैर फैलाकर किताब पढ़ रहा हैं एक कुर्सी पास खींचकर आनंदमई भी बैठ गईं। गोरा ने कुर्सी पर से पैर हटा लिए और सीधे बैठते हुए आनंदमई के चेहरे की ओर देखने लगा।

आनंदमई ने कहा, "बेटा, गोरा, मेरी एक बात याद रखना.... विनय से झगड़ा मत करना! मेरे लिए तुम दोनों दो भाई हो- तुम्हारे बीच फूट पड़ जाएगी तो मुझसे नहीं सहा जाएगा।"

गोरा बोला, "बंधु ही अगर बंधन काट देगा तो उसके पीछे-पीछे भागने में मुझसे समय नष्ट नहीं किया जाएगा।"

आनंदमई ने कहा, "मैं नहीं जानती कि तुम दोनों के बीच क्या घटा है। किंतु विनय तुम्हारा बंधन काटना चाहता है, इस बात पर तुम अगर विश्वास करते हो तो फिर तुम्हारी दोस्ती में क्या असर है?'

गोरा- "माँ, मुझे सीधा रास्ता पसंद है। जो दोनों तरफ बनाए रखना चाहते हैं मेरी उनके साथ नहीं निभती। जिसका स्वभाव ही दा नावों में पैर रखने का है उसको मेरी नाव में से पैर हटाना ही पड़ेगा- इसमें चाहे मुझे तकलीफ हो, चाहे उसे तकलीफ हो।"

आनंदमई, "हुआ क्या, यह तो बताओ? वह ब्रह्म लोगों के घर आता-जाता है, उसका यही अपराध है न?"

गोरा, "बहुत-सी बातें हैं, माँ!"

आनंदमई, "हुआ करें बहुत-सी बातें। लेकिन मेरी एक बात सुनो, गोरा! हर मामले में तुम इतने जिद्दी हो कि जिसे पकड़ते हो उसे तुमसे कोई छुड़ा नहीं सकता। फिर विनय के बारे में ही तुम क्यों ऐसे ढीले हो?। तुम्हारा अविनाश अगर गुट छोड़ना चाहता तो क्या तुम उसे सहज ही छोड़ देते? वह तुम्हें बंधु कहता है, क्या इसीलिए तुम्हारे और सब साथियों से वह कमतर हो गया?"

गोरा चुप होकर सोचने लगा। आनंदमई की इस ताड़ना से अपने मन की स्थिति उसके सामने साफ हो गई। अब तक वह समझ रहा था कि वह कर्तव्य के लिए दोस्ती का बलिदान करने जा रहा है, अब उसने स्पष्ट देखा कि बात इससे ठीक विपरीत है। उसकी दोस्ती के अभिमान को ठेस लगी है, इसलिए विनय को वह दोस्ती की सबसे बड़ी सज़ा देने को उद्यत हुआ है! मन-ही-मन वह जानता था कि विनय को बाँधे रखने के लिए मित्रता ही काफी है, और किसी तरह की कोशिश दोस्ती का अपमान होगा।

उनकी बात गोरा के मन को छू गई है, इसका भान होते ही आनंदमई और कुछ कहे बिना उठकर धीरे-धीरे जाने लगीं। सहसा गोरा भी तेजी से उठा और खूँटी पर से चादर उताकर कंधे पर डाल दी।

आनंदमई ने पूछा, "कहीं जा रहे हो, गोरा?"

गोरा ने कहा, "विनय के घर जा रहा हूँ।"

आनंदमई, "खाना तैयार है, खाकर जाना।"

गोरा, "मैं विनय को पकड़कर लाता हूँ, वह भी यहीं खाएगा।"

और कुछ न कहकर आनंदमई नीचे की ओर चलीं। सीढ़ी पर पैरों की ध्वनि सुनकर सहसा रुककर बोलीं, "विनय तो वह आ रहा है।"

विनय को देखते ही आनंदमई की ऑंखें छलछला उठीं। उन्होंने स्नेह से विनय के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "विनय बेटा, खाना तो नहीं खाया तुमने?"

विनय ने कहा, "नहीं, माँ!"

आनंदमई, "तुम्हें यहीं भोजन करना होगा।"

एक बार विनय ने गोरा के मुँह की ओर देखा। गोरा ने कहा, "तुम्हारी बड़ी लंबी उम्र है, विनय! मैं तुम्हारे यहाँ ही जा रहा था।"

आनंदमई का हृदय हल्का हो गया; वह तेज़ी से उतर गईं।

कमरे में आकर दोनों बैठे तो गोरा ने यों ही वार्तालाप शुरू करने को कुछ बात उठाते हुए कहा, "जानते हो, अपने साथियों के लिए एक बहुत अच्छा जिमनास्टिक मास्टर मिल गया है। सिखा भी अच्छा रहा है।"

मन के भीतर दबी बात सामने लाने का साहस अभी किसी को नहीं था। दोनों जब खाने बैठ गए तब उनकी बातचीत के ढंग से आनंदमई जान गईं कि अभी उनके बीच का खिंचाव बिल्कुल खत्म नहीं हुआ है-दुराव अभी भी बाकी है। बोलीं, "विनय, रात बहुत हो गई है, आज तुम यहीं सो रहाना! मैं तुम्हारे घर सूचना भिजवाए देती हूँ।"

विनय ने चकित होकर गोरा के चेहरे की ओर देखते हुए कहा, "भुक्त्वा राजवदाचरेत्! खा-पीकर राह चलने का नियम नहीं है। तो फिर यहीं सोया जाएगा।"

भोजन करके दोनों मित्र छत पर आकर चटाई बिछाकर बैठ गए। भादों जा रहा था; शुक्ल पक्ष की चाँदनी आकाश में छिटकी हुई थी। हल्के सफेद बादल मानो जींद के हल्के झोंके-से बीच-बीच में चाँद पर ज़रा घूँघट करते धीरे-धीरे उड़े चले जा रहे थे। चारों ओर दिगंत तक छोटी-बड़ी, ऊँची-नीची छतों की श्रेणी प्रकाश-छाया में, और कभी-कभी पेड़ों के शिखरों के साथ मिलती हुई, मानो किसी कवि की कल्पना की तरह फैली हुई थी।

गिरजाघर की घड़ी में ग्यारह बजे। कुल्फी वाला अपना आज की आखिरी हाँक लगाकर चला गया। गाड़ियों का शोर धीमा पड़ गया। गोरा की गली में किसी के जागने का कोई चिन्ह नहीं था; केवल पड़ोसी के अस्तबल के काठ के फर्श पर घोड़े की टाप का शब्द कभी-कभी सुनाई पड़ जाता या कोई कुत्ता भौंक उठता। बहुत देर तक दोनों चुप रहे। फिर विनय ने पहले कुछ ससकुचाते हुए और फिर बड़ी तेज़ी से अपने मन की बात कह डाली, "भाई गोरा, मेरा हृदय भर उठा है। मैं जातना हूँ कि इन सब बातों की ओर तुम्हारा ध्यान नहीं है, किंतु तुम्हें कहे बिना रहा भी नहीं जा सकता। भला-बुरा कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ-किंतु इतना निश्चय है कि यहाँ कोई चालाकी नहीं चलेगी। किताबों में बहुत-कुछ पढ़ा है, और इतने दिनों से यही सोचता आया हूँ कि मैं सब जानता हूँ। जैसे तस्वीरों में पानी देखकर सोचता रहता था कि तैरना तो बहुत आसान है; किंतु आज पानी में उतरकर पलभर में ही पता चल गया कि यह हँसी-खेल नहीं है।

यों कहकर विनय अपने जीवन के इस नए आश्चर्य के उदय को यत्नपूर्वक गोरा के सामने प्रकट करने लगा।

वह कहने लगा- आजकल उसके लिए जैसे दिन और रात में कहीं कोई दूरी नहीं है, सारे आकाश में कहीं कोई सूनी जगह नहीं है, सब-कुछ पूर्ण रूप से भर गया है- जैसे वसंत-ऋतु में शहद का छत्ता शहद से भरकर फटने-सा लगता है, वैसे ही। पहले इस चराचर विश्व का बहुत-सा हिस्सा उसके जीवन के बाहर ही पड़ा रहता था- जितने से उसका मतलब था उतना ही उसकी नज़र पड़ता था। किंतु आज वह पूरा उसके सामने है, पूरा उसे स्पर्श करता है, पूरा एक नए अर्थ से भर उठा है। वह नहीं जानता था कि धरती को वह इतना प्यार करता है, आकाश ऐसे अचरज-भरा है, प्रकाश ऐसा अपूर्व होता है, सड़क पर अपरिचित यात्रियों का आना-जाना भी इस गंभीर भाव से सच है। उसकी उद्दाम इच्छा होती है, इस संपूर्णता के लिए वह कुछ उद्यम करे, अपनी सारी शक्ति को आकाश के सूर्य की भाँति वह संसार के अनवरत उपयोग में लगा दे।

सारी बातें विनय किसी विशेष व्यक्ति के संबंध में कह रहा है, ऐसा नहीं जान पड़ता। मानो वह किसी का भी नाम ज़बान पर नहीं ला सकता,कोई आभास देने में भी सकुचा जाता है। यह जो चर्चा वह कर रहा है, इसमें भी वह जैसे अपने को किस के प्रति अपराध अनुभव कर रहा है। यह चर्चा अन्याय है, यह अपमान है-किन्तु आज इस सूनी रात में, नि:स्तब्ध आकाश के नीचे, बंधु के पास बैठकर इस अन्याय से वह किसी तरह अपने को नहीं रोक सका।

कैसा है यह चेहरा! प्राणों की दीप्ति उसके कपोलों की कोमलता के बीच कितनी सुकुमारता से चमक उठती हैं! हँसने पर उसका अंत:करण मानो अद्‌भुत आलोक-सा फूट पड़ता है। ललाट पर कैसी बुध्दि झलकती है! और घनी भौंहों की छाया के नीचे दोनों आँखें कैसी अवर्णनीय! और वे दोनों हाथ-मानो कह रहे हों कि सेवा और प्रेम की सुंदरता को सार्थक करने के लिए सदा प्रस्तुत हैं। विनय अपने जीवन और यौवन को धन्य मानता है, आनंद से मानो उसका हृदय फूला नहीं समा रहा है। पृथ्वी के अधिकतर लोग जिसे देखे बिना ही जीवन बिता देते हैं, विनय उसे यों आँखों के सामने मूर्त होते देख सकेगा, इससे बड़ा आश्चर्य क्या हो सकता है?

लेकिन यह कैसा पागलपन है- अनुचित बात है! हुआ करे अनुचित- अब उससे और सँभलता नहीं। अगर यही धारा उसे कहीं किनोर लगा दे तो ठीक है; अगर बहा दे या डुबा ही दे-तो क्या उपाय है? मुश्किल तो यही है कि उध्दार की इच्छा भी नहीं होती- इतने दिनों के संस्कार और परिस्थितियाँ सब भुलाकर चलते जाना ही मानो जीवन का सार्थक लक्ष्य है!

गोरा चुपचाप सुनता रहा। इसी छत पर ऐसी ही निर्जन चाँदनी रात में और भी अनेक बार दोनों में बहुत बातें हुई हैं- साहित्य की, ज़माने की,समाज कल्याण की कितनी चर्चाएँ, आगत जीवन के बारे में दोनों के कितने संकल्प, लेकिन ऐसी बात इससे पहले कभी नहीं हुई। मानव-हृदय का इतना बड़ा सत्य, ऐसा प्रकाश, गोरा के सामने इस प्रकार कभी नहीं आया। इस सारे क्रिया कलाप को वह इतने दिन से कविता का खिलवाड़ कहकर उसकी पूर्णत: उपेक्षा करता आया है। आज उसे इतना पास देखकर वह उसको और अस्वीकार न कर सका। इतना ही नहीं, उसके वेग ने गोरा के मन को हिला दिया, उसकी पुलक उसके सारे शरीर में बिजली-सी लहक गई। उसके यौवन के किसी अगोचर अंश का पर्दा पल-भर के लिए हवा से उड़ गया और अनेक दिनों से बंद उस स्थान में शरद रजनी की चाँदनी प्रवेश करके माया का विस्तार करने लगी।

न जाने कब चद्रमा छतों के पीछे छिप गया। फिर पूर्व की ओर सोए हुए शिशु की मुस्कराहट-सा हल्के प्रकाश का आभास हुआ। इतनी देर के बाद विनय का मन हल्का हुआ तो एक झिझक ने उसे ग्रस लिया। थोड़ी देर चुप रहकर वह बोला, "मेरी ये सब बातें बड़ी ओछी लगेंगी तुम्हें। तुम शायद मन-ही-मन मेरा मज़ाक भी उड़ा रहे हो। लेकिन क्या करूँ, कभी तुमसे कुछ छिपाया नहीं है, आज भी कुछ नहीं छिपा रहा हूँ-तुम समझो या न समझो!"

गोरा ने कहा, "विनय, मैं ये सब बातें ठीक-ठीक समझता हूँ, ऐसा तो नहीं कह सकता। अभी दो दिन पहले तक तुम भी कहाँ समझते थे। और जीवन के काम-काज के बीच आज तक ये सब आवेग और आवेश मेरी नज़र में बड़ी छोटी चीज़ थीं, इससे भी इनकार नहीं कर सकता। लेकिन इसीलिए ये सचमुच छोटी है ऐसा शायद नहीं है। इनकी शक्ति और गंभीरता से मेरा सामना नहीं हुआ, इसीलिए ये मुझे सार-हीन और छलना-सी लगी हैं। लेकिन तुम्हारी इतनी बड़ी उपलब्धि को मैं आज झूठ कैसे कह दूँ? असल में बात यह है कि जो आदमी जिस क्षेत्र में है उस क्षेत्र के बाहर की सच्चाई यदि उसके निकट छोटी न बनी रहे तो वह काम ही नहीं कर सकता। इसीलिए नियमत: दूर की चीजें मनुष्य को छोटी नज़र आती हैं- सब सत्यों को ईश्वर एक-सा प्रत्यक्ष करके उसे आफत में नहीं डालता। हमें कोई एक पक्ष चुनना ही होगा, सब-कुछ एक साथ जकड़ लेने का लोभ छोड़ना ही होगा, नहीं तो सच्चाई हाथ नहीं आएगी। तुम जहाँ खड़े होकर सत्य की जिस मूर्ति को प्रत्यक्ष देखते हो, मैं वहीं पर उसी मूर्ति का अभिवादन करने नहीं जा सकूँगा- उससे मेरे जीवन का सत्य नष्ट हो जाएगा। वह या तो इधर हो, या उधर।"

विनय बोला, "यानी-या तो विनय हो,या गोरा! मैं अपने को भर लेने के लिए निकला हूँ, और तुम अपने को त्याग देने के लिए!"

खीझकर गोरा ने कहा, "विनय, तुम मुँहज़बानी किताबें लिखना शुरु मत करो! तुम्हारी बात सुनकर एक बात मैं स्पष्ट समझ गया हूँ। अपने जीवन में तुम आज एक बहुत प्रबल सत्य के सामने खड़े हो- उसे टाल नहीं सकोगे। सत्य की उपलब्धि हो जाने से उसके आगे आत्म-समर्पण करना ही होगा- कोई दूसरा मार्ग नहीं है। जिस क्षेत्र में मैं हूँ उस क्षेत्र के सत्य को मैं भी ऐसे ही एक दिन पा लूँ, यही मेरी आकांक्षा है। इतने दिनों तक तुम किताबी-प्रेम का परिचय पाकर ही संतुष्ट थे- मैं भी किताबी स्वदेश-प्रेम ही जानता हूँ। आज तुम्हारे सामने जब प्रेम प्रत्यक्ष हुआ तभी तुम जान सके कि किताबी ज्ञान से वह कितना अधिक सत्य है- वह तुम्हारे चराचर जगत पर छा गया है और तुम कहीं भी उससे छुटकारा नहीं पा रहे हो। मेरे सामने जिस दिन स्वदेश-प्रेम ऐसे ही सर्वांगीण भाव से प्रत्यक्ष हो जाएगा उस दिन मेरे भी बचाव का रास्ता न रहेगा- उस दिन वह मेरा धन-जीवन, मेरा हाड़-मांस-मज्जा, मेरा आकाश-प्रकाश, मेरा सब-कुछ अनायास खींचकर ले जा सकेगा स्वदेश की वह सत्य-मूर्ति कैसी विस्मय-भरी सुंदर,सुनिश्चित और सुगोचर है, उसका आनंद और उसकी वेदना कितनी प्रचंड है, प्रबल है, जो पल-भर में जीवन-मरण को बाढ़ की तरह बहा ले जाती है- यह आज तुम्हारी बात सुनकर मन-ही-मन थोड़ा-थोड़ा अनुभव कर

पा रहा हूँ। तुम्हारे जीवन की यह उपलब्धि आज मेरे जीवन को ललकार रही है- तुमने जो पाया है मैं उसे कभी समझ सकूँगा या नहीं यह तो नहीं जानता; किंतु मैं जो पाना चाहता हूँ मानो उसका आस्वाद तुम्हारी मार्फत थोड़ा-थोड़ा पा सकता हूँ।

कहते-कहते चटाई छोड़ गोरा उठकर खड़ा हुआ और छत पर टहलने लगा। पूर्व में उषा का आभास मानो उसे एक वेद वाक्य-सा लगा; मानो प्राचीन तपोवन से एक वेद-मन्त्र उच्चरित हो उठा। उसका शरीर रोमांचित हो आया- क्षण-भर वह मुग्ध-सा खड़ा रहा और उसे लगा कि उसका ब्रह्म-रंध्र भेदकर एक ज्योति सूक्ष्म मृणाल-तन्तु के सहारे उठकर एक ज्योतिर्मय शतदल-सी सारे आकाश में व्याप्त होकर खिल उठी है- उसके प्राण, चेतना,शक्ति मानो पूर्णत: एक परम आनंद में जा मिली है।

जब गोरा अपने-आप में लौट आया तब सहसा बोला, "विनय, तुम्हें इस प्रेम को भी पार करके आना होगा- मैं कहता हूँ, वहीं रुक जाने से नहीं चलेगा। मेरा आह्नान जिस महाशक्ति ने किया है, वह जितना बड़ा सत्य है, यह मैं एक दिन तुम्हें दिखाऊगा। आज मेरा मन भारी आनंद से पूरित है- अब मैं तुम्हें और किसी के हाथों में नहीं छोड़ सकूँगा।"

चटाई छोड़कर विनय उठ गया और गोरा के पास जा खड़ा हुआ। गोरा ने एक अपूर्व उत्साह से उसे दोनों बाँहों में घेरकर गले लगाते हुए कहा, "भाई विनय, हम मरेंगे तो एक ही मौत मरेंगे- हम दोनों एक हैं, कोई हमें अलग नहीं कर सकेगा, कोई बाँध नहीं सकेगा।"

गोरा के इस गहन उत्साह का वेग विनय के हृदय को भी तरंगित करने लगा; उसने कुछ कहे बिना अपने को गोरा के इस उत्साह के प्रति सौंप दिया।

गोरा और विनय दोनों चुपचाप साथ-साथ टहलने लगे। पूर्व का आकाश लाल हो उठा। गोरा ने कहा, "भाई, अपनी देवी को मैं देखता हूँ तो सौंदर्य के बीच नहीं, वहाँ तो अकाल है, दारिद्रय है, दुख और अपमान है। वहाँ प्रार्थना गाकर, फूल चढ़कार पूजा नहीं होती; वहाँ प्रेरणा देकर, लहू बहाकर पूजा करनी होगी। मुझे तो सबसे बड़ा आनंद यही जान पड़ता है कि वहाँ सुख में मगन होने को कुछ नहीं है, वहाँ अपने ही सहारे पूरी तरह जाग्रत रहना होगा, सब-कुछ देना होगा। वहाँ मधुरता नहीं है- वह एक दुर्जय, दुस्सह आविर्भाव है-निष्ठुर है, भयंकर है- उसमें एक ऐसी झंकार है जिसमें सातों स्वर एक साथ बज उठने से तार ही टूट जाते हैं! उसके स्मरण से ही मेरा मन उल्लास से भर उठता है। मुझे जान पड़ता है कि यही है पुरुष का आनंद-

यही है जीवन का तांडव नृत्य! पुराने के ध्वंस-यज्ञ की अग्नि-शिखा के ऊपर नए की सुंदर मूर्ति देखने के लिए ही पुरुष की साधना है। मैं लाल प्रकाश में एक बंधन-मुक्त ज्योतिर्मय भविष्य को देख पाता हूँ- आह के इस मोह में भी देख रहा हूँ- देखो, मेरे हृदय के भीतर कौन डमरू बजा रहा है!"

विनय ने कहा, "भाई गोरा, मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा। किंतु तुमसे इतना कहता हूँ, मुझे कभी दुविधा में मत रहने देना! एकदम भाग्य की तरह कठोर होकर मुझे खींचे लिए जाना। हम दोनों का रास्ता एक है, लेकिन दोनों की शक्ति तो बराबर नहीं है।"

गोरा ने कहा, "हमारी प्रकृतियाँ अलग-अलग हैं। लेकिन एक बहुत गहरा आनंद हमारी भिन्न प्रकृतियों को एक कर देगा- जो प्रेम तुम्हारे-मेरे बीच है उससे भी बड़ा प्रेम हमें एक कर देगा। जब तक वह प्रेम प्रत्यक्ष नहीं होगा तब तक हम दोनों के बीच पग-पग पर टकराहट, विरोध, अलगाव होता रहेगा- फिर एक दिन हम सब-कुछ भूलकर, अपना अलगाव, अपना बंधुत्व भी भूलकर, एक बहुत विशाल, प्रचंड आत्म-परिहास के द्वारा, अटल शक्ति के द्वारा एक हो जाएँगे-वह कठिन आनंद ही हमारे बंधुत्व की चरम उपलब्धि होगा।"

गोरा का हाथ पकड़ते हुए विनय बोला, "ऐसा ही हो!"

गोरा ने कहा, "लेकिन तब तक तुम्हें मैं बहुत दु:ख देता रहूँ। मेरे अत्याचार तुम्हें सहने होंगे, क्योंकि अपने बंधुत्व को ही मैं जीवन का अंतिम उद्देश्य नहीं मान सकूँगा- किसी भी तरह उसी को बचाते रहने की कोशिश करके उसका अपमान नहीं करूँगा। इससे अगर दोस्ती टूट जाए तब तो कोई उपाय नहीं है, लेकिन गर रहे तभी उसकी सार्थकता है।"

इसी समय पैरों की आवाज़ सुनकर चौंककर दोनों ने पीछे मुड़कर देखा आनंदमई छत पर आ रही थी। उन्होंने दोनों के हाथ पकड़कर खींचकर उन्हें नीचे ले जाते हुए कहा, "चलो, जाकर सोओ!"

दोनों ने कहा, "अब क्या नींद आएगी, माँ!"

"आएगी", कहकर आनंदमई ने दोनों को बिस्तर पर पास-पास लिटा दिया और कमरे का दरवाज़ा उढ़काकर सिरहाने बैठकर पंखा झलने लगीं।

विनय ने कहा, "माँ, तुम्हारे पंखा झेलते रहने से तो हमें नींद नहीं आएगी।"

आनंदमई बोली, "कैसे नहीं आएगी, देखूँगी! मैं चली गई तो तुम लोग फिर बहस करने लगोगे- वह नहीं होने का।"

दोनों के सो जाने पर चुपके से आनंदमई कमरे के बाहर चली गईं। उन्होंने सीढ़ियाँ उतरते हुए देखा, महिम ऊपर जा रहा है। उन्होंने कहा, "अभी नहीं- सारी रात वे लोग सोए नहीं। मैं अभी-अभी उन्हें सुलाकर आ रही हूँ।"

महिम ने कहा, "वाह रे, इसी को कहते हैं दोस्ती! ब्याह की कोई बात हुई थी या नहीं, तुम्हें कुछ पता है?"

आनंदमई, "पता नहीं।"

महिम, "जान पड़ता है, कुछ-न-कुछ तय हो गया है। उनकी नींद कब टूटेगी? ब्याह जल्दी न हुआ तो कई मुश्किलें आ खड़ी होंगी।"

हँसकर आनंदमई ने कहा, "उनके सो जाने से ऐसी कोई बड़ी मुश्किल नहीं होगी- वे लोग आज ही किसी समय जाग जाएँगे।"

वरदासुंदरी ने परेशबाबू से पूछा, "तुम सुचरिता का ब्याह नहीं करोगे?"

थोड़ी देर परेशबाबू अपने स्वाभाविक शांत गंभीर भाव से दाढ़ी सहलाते रहे, फिर मृदु स्वर में बोले, "पात्र कहाँ है?"

वरदासुंदरी बोलीं, "क्यों, पानू बाबू के साथ उसके विवाह की बात तो तय हो ही चुकी है- कम से कम हम लोग तो यही समझते हैं, सुचरिता भी यही समझती है।"

परेशबाबू बोले, "मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि राधारानी को पानू बाबू ठीक पसंद ही हैं।"

वरदासुंदरी- "देखो, यही सब मुझे अच्छा नहीं लगता। सुचरिता को कभी मैंने अपनी लड़कियों से अलग नहीं माना; लेकिन इसीलिए ही यह भी कहना होगा कि उसमें ऐसी क्या असाधारण बात है? पानू बाबू जैसे विद्वान धार्मिक आदमी को वह अगर पसंद है तो यह क्या यों ही उड़ा देने की बात है? तुम जो कहो, मेरी लावण्य देखने में उससे कहीं सुंदर है, लेकिन मैं तुमसे कहे देती हूँ, जिसे भी हम पसंद कर देंगे, वह उससे ब्याह कर लेगी, कभी 'ना' नहीं करेगी। तुम्हीं सुचरिता को अगर ऐसे सिर चढ़ाकर रखोगे तो उसके लिए पात्र मिलना मुश्किल हो जाएगा।

इस पर परेशबाबू ने और कुछ नहीं कहा। वह वरदासुंदरी के साथ कभी बहस नहीं करते, खासकर सुचरिता के संबंध में।

सतीश को जन्म देकर जब सुचरिता की माँ की मृत्यु हुई तब सुचरिता सात बरस की थी। उसके पिता रामशरण हालदार ने पत्नी की मृत्यु के बाद ब्रह्म-समाज अपनाया और पड़ोसियों के अत्याचार के कारण गाँव छोड़कर ढाका में आ बसे। वहीं पोस्ट-ऑफिस की नौकरी करते परेशबाबू के साथ उनकी घनिष्ठता हो गई। तभी से सुचरिता परेशबाबू को ठीक अपने पिता के समान मानती है।

रामशरण की मृत्यु अचानक हो गई। अपनी वसीयत में अपना सब रुपया-पैसा लड़के और लड़की के नाम करके वह उनकी देख-भाल परेशबाबू को सौंप गए। सतीश और सुचरिता तभी से परेशबाबू के परिवार के हो गए।

घर या बाहर के भी लोग सुचरिता के प्रति जब विशेष स्नेह या दिलचस्पी दिखाते तो वरदासुंदरी को ठीक न लगता। फिर भी चाहे जिस कारण हो, सुचरिता सभी से स्नेह और सम्मान पाती। वरदासुंदरी की अपनी लड़कियाँ भी उसके स्नेह के लिए आपस में झगड़ती रहतीं। विशेषकर मँझली लड़की ललिता तो अपने ईष्या-पोषित स्नेह से सुचरिता को मानो दिन-रात जकड़कर बाँधे रखना चाहती थी।

पढ़ने-लिखने में उनकी लड़कियाँ उस ज़माने की सब विदुषियों से आगे निकल जाएँ, वरदासुंदरी की यही कामना थी। उनकी लड़कियों के साथ-साथ बड़ी होती हुई सुचरिता भी उन-सा ही कौशल प्राप्त कर ले, यह बात उनके लिए सुखकर नहीं थी। इसीलिए सुचरिता के स्कूल जाने के समय तरह-तरह के विघ्न खड़े होते ही रहते हैं।

इन सब विघ्नों के कारण को समझते हुए परेशबाबू ने सुचरिता का स्कूल छुड़ा दिया और स्वयं पढ़ाना आरंभ कर दिया। इतना ही नहीं, सुचरिता मानो विशेष रूप से उन्हीं की संगिनी हो गई। वह उसके साथ अनेक विषयों पर बातचीत करते, जहाँ जाते उसे साथ ले जाते, जब कहीं दूर रहने को मजबूर होते तब चिट्ठियों में अनेक प्रसंग उठाकर उनकी विस्तृत चर्चा किया करते। इसी ज्ञान के ारण सुचरिता का मन उसकी उम्र और अवस्था से कहीं आगे बढ़ गया था। उसके चहेरे पर और आचरण में जो एक सौम्य गंभीरता आ गई थी, उसे देखकर कोई उसे बालिका नहीं समझ सकता था;और लावण्य उम्र में उसके लगभग बराबर होने पर भी हर बात में सुचरिता को अपने से बड़ा मानती थी। यहाँ तक कि वरदासुंदरी भी चाहने पर भी किसी तरह उसकी अवज्ञा नहीं कर सकती थीं।

पाठक यह तो जान ही चुके हैं कि हरानबाबू बड़े उत्साही ब्रह्म थे। ब्रह्म समाज के सभी कामों में उनका सहयोग था- रात्रि-पाठशाला में वह शिक्षक थे, पत्र के संपादक थे, स्त्री-विद्यालय के सेक्रेटरी थे- वह मानो काम से थकते ही न थे। एक दिन यह युवक ब्रह्म-समाज में बहुत ऊँचा स्थान पाएगा,इसका सभी को विश्वास था। विशेष रूप से अंग्रेजी भाषा पर उनके अधिकार और दर्शन-शास्त्र में उनकी गहरी पैठ की ख्याति विद्यालय के छात्रों के द्वारा ब्रह्म-समाज के बाहर भी फैल गई थी।

इन्हीं सब कारणों से सुचरिता भी दूसरे ब्रह्म लोगों की तरह हरानबाबू को विशेष श्रध्दा से देखती थी। ढाका से कलकत्ता आते समय हरानबाबू से परिचय के लिए उसके मन में विशेष उत्सुकता भी थी।

अंत में इन्हीं सुप्रसिध्द हरानबाबू के साथ सुचरिता का न केवल परिचय हुआ, बल्कि थोड़े दिनों में ही सुचरिता के प्रति अपने हृदय के आकर्षण को प्रकट करने में भी हरानबाबू को संकोच न हुआ। उन्होंने स्पष्ट रूप से सुचरिता के सामने प्रणय-निवेदन किया हो ऐसी बात नहीं थी; किंतु सुचरिता की सब प्रकार की अपूर्णता पूरी करने, उसकी कमियों का संशोधन करके उसका उत्साह बढ़ाने, और उसकी उन्नति के साधन जुटाने का काम वह ऐसे मनोयोग से करने लगे कि सभी ने यह समझ लिया कि वह विशेष रूप से इस कन्या को अपने लिए उपयुक्त संगिनी के रूप में तैयार करना चाहते हैं

इस बात से हरानबाबू के प्रति वरदासुंदरी की पहले की श्रध्दा खत्म हो गई। वह उन्हें मामूली स्कूल-मास्टर मानकर उनकी अवज्ञा करने की कोशिश करने लगी।

जब सुचरिता ने भी यह जान लिया कि विख्यात हरानबाबू के चित्त पर उसने विजय पाई है, तब उसे मन-ही-मन भक्ति-मिश्रित गर्व का अनुभव हुआ।

प्रधान पक्ष की ओर से कोई प्रस्ताव न आने पर भी सबने जब यह तय कर लिया कि हरानबाबू के साथ ही सुचरिता का विवाह ठीक हो गया है,तब मन-ही-मन सुचरिता ने भी हामी भर दी थी; और हरानबाबू ने ब्रह्म-समाज के जन हितों के लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया है, उनके उपयुक्त होने के लिए उसे कैसे ज्ञान और साधना की आवश्यकता होगी, उसके लिए यह विशेष उत्सुकता का विषय हो गया था। वह किसी मनुष्य से विवाह करने जा रही है, इसका हृदय से उसने अनुभव नहीं किया- मानो वह समूचे ब्रह्म-समाज के महान मंगल से ही विवाह करने जा रही हो, और बहुत-से ग्रंथ पढ़कर मंगल विद्वान हो गया हो तथा तत्व-ज्ञान के कारण बहुत गंभीर भी।

विवाह की कल्पना उसके लिए मानो बहुत बड़ी जिम्मेदारी की घबराहट के कारण रचा हुआ एक पत्थर का किला हो गई। केवल सुख से रहने के लिए वह किला नहीं है बल्कि युध्द करने के लिए है- पारिवारिक नहीं, ऐतिहासिक है।

ऐसी स्थिति में ही विवाह हो जाता तो कम-से-कम कन्या-पक्ष के सभी लोग हमें बहुत बड़ा सौभाग्य मानकर ही ग्रहण करते। किंतु हरानबाबू जीवन के अपने ही बनाए हुए महान उत्तरदायित्व को इतना बड़ा करके देखते थे कि केवल अच्छा लगने के कारण आकर्षित होकर विवाह करने को वे अपने लिए योग्य नहीं मानते थे। ब्रह्म-समाज को इस विवाह के द्वारा कहाँ तक लाभ होगा, इस पर पूरा विचार किए बिना वह इस ओर प्रवृत्त नहीं हो सकते थे। इसीलिए उन्होंने इसी नज़रिए से सुचरिता की परीक्षा लेनी आरंभ कर दी।

इस प्रकार परीक्षा देनी आरंभ कर दी। हरानबाबू परेशबाबू के घर में सबके सुपरिचित हो गए। उनके अपने घर के लोग उन्हें पानू बाबू कहकर पुकारते हैं, इसलिए इस घर में भी उनका वही नाम चलने लगा। अब उन्हें केवल अंग्रेजी विद्या के भंडार, तत्व-ज्ञान के आधार, और ब्रह्म-समाज के मंगल के अवतार के ही रूप में देखना काफी न रहा-वह मनुष्य भी है यही परिचय सबसे निकटतम परिचय हो गया। इस तरह वह केवल श्रध्दा और सम्मान के अधिकारी न रहकर अच्छा और बुरा लगने के नियम के अधीन हो गए।

विस्मय की बात यह थी कि पहले दूर से हरानबाबू की जो प्रवृत्ति सुचरिता की श्रध्दा पाती थी, निकट आने पर वही अब उसे अखरने लगी। ब्रह्म-समाज में जो कुछ सत्य, मंगल और सुंदर है, हरानबाबू द्वारा उस सबका मानो पालक बनकर उसकी रक्षा का भार लेने पर उसे बहुत ही छोटे जान पड़े। मनुष्य का सत्य के साथ संबंध भक्ति का संबंध है- वह भक्ति स्वभावतया मनुष्य को विनयशील बना देती है। ऐसा न होने पर वह संबंध जहाँ मनुष्य को उध्दत और अहंकारी बनाता है, वहाँ मनुष्य उस सत्य की तुलना में अपने ओछेपन को बहुत स्पष्ट प्रकाशित कर देता है। सुचरिता इस मामले में मन-ही-मन परेशबाबू और हरान के अंतर की समीक्षा किए बिना न रह सकी। ब्रह्म-समाज से जो कुछ परेशबाबू ने पाया है उसके सम्मुख वह मानो सदा नत-मस्तक है, वह उसे लेकर ज़रा भी प्रगल्भ नहीं होते, उसकी गहराई में उन्होंने अपने जीवन को डुबा दिया है। परेशबाबू की शांत मुख-छवि देखने पर, जिस सत्य को हृदय में वह धारणा किए हैं उसी की महत्ता ऑखों के सामने आती है। हरानबाबू किंतु वैसे हैं, उनमें ब्रह्मत्व नाम का एक तीव्र आत्म-प्रकाश बाकी

सब-कुछ के ऊपर छा जाता है और उनकी प्रत्येक बात तथा उनके प्रत्येक काम में अशोभन ढंग से प्रकट हो जाता हैं इससे संप्रदाय में उनका सम्मान बढ़ा था; किंतु परेशबाबू की शिक्षा के प्रभाव से सुचरिता साम्प्रदायिक संकीर्णता में नहीं बँध सकी थी, इसलिए हरानबाबू की यह एकाकी ब्राह्मिकता उसकी स्वाभाविक मानवता को ठेस पहुँचाती थी। हरानबाबू समझते थे धर्म-साधना के कारण उनकी दृष्टि इतनी स्वच्छ व तेज़ हो गई है कि दूसरे सब लोगों का भला-बुरा और झूठ-सच वह सहज ही समझ सकते हैं। इसीलिए वह सदा हर किसी का विचार करने को तैयार रहते। विषई लोग पर निंदा और नुक्ताचीनी करते रहते हैं; लेकिन जो धार्मिक भाषा में यह काम करते हैं उनकी इस निंदा के साथ एक तरह का आध्यात्मिक अहंकार भी मिला रहता है जो संसार में बहुत बड़ा उपद्रव पैदा कर देता है। उस भाव को सुचरिता बिल्कुल नहीं सह सकती थी। उसके मन में ब्रह्म-संप्रदाय के बारे में कोई गर्व न हो ऐसा नहीं था; किंतु ब्रह्म-समाज में जो बड़े लोग हैं वे ब्रह्म होने के कारण ही एक विशेष शक्ति पाकर बड़े बने हैं, या कि ब्रह्म-समाज के बाहर जो चरित्र-भ्रष्ट लोग हैं वे ब्रह्म न होने के कारण ही विशेष रूप से शक्तिहीन होकर बिगड़ गए हैं, इस बात को लेकर हरानबाबू से सुचरिता की कई बार बहस हो जाती थी।

ब्रह्म-समाज के मंगल की आड़ लेकर विचार करने बैठकर हरानबाबू जब परेशबाबू को भी अपराधी ठहराने से नहीं चूकते थे तब सुचरिता मानो आहत नागिन-सी तिलमिला उठती थी। बंगाल में उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में भगवद्गीता को लेकर बातचीत नहीं होती थी, लेकिन परेशबाबू सुचरिता के साथ कभी-कभी गीता पढ़ते थे, कालीसिंह का महाभारत भी उन्होंने सुचरिता को लगभग पूरा पढ़कर सुनाया था। हरानबाबू को यह अच्छा नहीं लगा। इन सब ग्रंथों को वह ब्रह्म-घरों से दूर देने के पक्षपाती थे। उन्होंने स्वयं भी ये सब नहीं पढ़े थे। रामायण, महाभारत, भगवद्गीता को वह हिंदुओं की किताबें कहकर दूर रखना चाहते थे। धर्म-शास्त्रों में एक मात्र बाइबल ही उनका मान्य ग्रंथ था। परेशबाबू अपनी शास्त्र-चर्चा में एवं छोटी-मोटी अनेक बातों में ब्रह्म-अब्रह्म की सीमा की रक्षा करते हुए नहीं चलते, यह बात हरान के मन में काँटें-सी चुभती थी। परेशबाबू के आचरण के बारे में प्रकट या मन-ही-मन कोई किसी तरह का दोषारोपण करने का साहस करे, सुचरिता यह नहीं सह सकती थी। हरानबाबू का ऐसा दु:साहस प्रकट हो जाने के कारण ही वह सुचरिता की नज़रों में गिर गए थे।

अनेक ऐसे ही कारणों से परेशबाबू के घर में हरानबाबू का मान दिन-प्रतिदिन घटता गया था। वरदासुंदरी भी ब्रह्म-अब्रह्म का भेद निबाहने में यद्यपि हरानबाबू से

किसी मायने में कम उत्साही न थी, और उन्हें भी अनेक समय पति के आचरण के कारण लज्जा का बोध होता था, फिर भी हरानबाबू को वह आदर्श-पुरुष नहीं मानती थीं। हरानबाबू के हज़ारों दोष उनकी नज़रों में रहते थे।

हरानबाबू के साम्प्रादायिक उत्सह के अत्याचार और नीरस संकीर्णता से भीतर-ही-भीतर सुचरिता का मन प्रतिदिन उनसे विमुख होता जाता था,फिर भी उसका विवाह हरानबाबू से ही होगा, इस संबंध में किसी पक्ष के मन में कोई विघ्न या संदेह नहीं था। धर्म समाज की दुकान में जो व्यक्ति अपने ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में बहुत ऊँचे दाम का लेबिल लगाए रहता है, धीरे-धीरे अन्य लोग भी उसका महूँगापन स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए न तो स्वयं हरानबाबू के, न और किसी के मन में इस बारे में कोई शंका थी कि अपने महान संकल्प के अनुसार चलते हुए अच्छी तरह परीक्षा करके सुचरिता को पसंद कर लेने पर हरानबाबू के निश्चय को सभी लोग सिर-ऑखों पर नहीं लेंगे। और तो और, परेशबाबू ने भी हरानबाबू के दावे को अपने मन में अग्राह्य नहीं माना था। सभी लोग हरानबाबू को ब्रह्म-समाज का भावी नेतृत्व मानते थे; वह भी इसके विरुध्द न सोचकर हामी भर देते थे। इसीलिए उनके लिए भी विचारणीय बात यही थी कि हरानबाबू जैसे आदमी के लिए सुचरिता उपयुक्त होगी या नहीं; सुचरिता के लिए हरानबाबू कहाँ तक उपयुक्त होंगे, यह उन्होंने भी नहीं सोचा था।

इस विवाह के सिलसिले में और किसी ने जैसे सुचरिता की बात सोचना ज़रूरी नहीं समझा, वैसे ही अपनी बात सुचरिता ने भी नहीं सोची। ब्रह्म-समाज के और सब लोगों की तरह उसने भी सोच लिया था कि हरानबाबू जिस दिन कहेंगे, "मैं इस कन्या को ग्रहण करने को तैयार हूँ", वह उसी दिन इस विवाह के रूप में अपने महान कर्तव्य को स्वीकार कर लेगी।

सब ऐसे ही चलता जा रहा था। इसी मध्य उस दिन गोरा को उपलक्ष्य करके हरानबाबू के साथ सुचरिता का दो-चार कड़ी बातों का जो आदान-प्रदान हो गया, उसका सुर समझकर परेशबाबू के मन में शंका उठी कि सुचरिता शायद हरानबाबू पर यथेष्ट श्रध्दा नहीं करती, या शायद दोनों के स्वभाव में मेल न होने के कारण ऐसा है। इसीलिए जब वरदासुंदरी विवाह के लिए ज़ोर दे रही थीं तब परेशबाबू पहले की तरह हामी नहीं भर सके। उसी दिन वरदासुंदरी ने अकेले में सुचरिता को बुलाकर कहा, "तुमने तो अपने पिता को सोच में डाल दिया है।"

सुनकर सुचरिता चौंक उठी। भूल से भी वह परेशबाबू के दु:ख का कारण ो, इससे अधिक कष्ट की बात उसके लिए और नहीं हो सकती। उसका चेहरा फीका पड़ गया। उसने पूछा, "क्यों, मैंने क्या किया है?"

वरदासुंदरी, "मैं क्या जानूँ, बेटी! उन्हें लगता है, पानू बाबू तुम्हें पसंद नहीं है। ब्रह्म-समाज के सभी लोग लोग जानते हैं कि पानू बाबू के साथ तुम्हारा विवाह एक तरह से पक्का हो चुका है- ऐसी हालत में अगर तुम.... "

सुचरिता, "लेकिन माँ, इस बारे में मैंने तो किसी से कोई बात ही नहीं की?"

सुचरिता का आश्चर्य करना स्वाभाविक ही था। वह हरानबाबू के व्यवहार से कई बार क्रोधित अवश्य हुई है; किंतु विवाह-प्रस्ताव के विरुध्द उसने कभी मन-ही-मन भी कुछ नहीं सोचा। इस विवाह से वह सुखी होगी या दु:खी होगी, उसके मन में यह सवाल भी कभी नहीं उठा, क्योंकि वह यही जानती थी कि सुख-दु:ख की दृष्टि से इस विवाह पर विचार नहीं किया जा सकता।

तब उसे ध्यान आया, परेशबाबू के सामने ही उस दिन उसने पानू बाबू के प्रति अपनी विरक्ति प्रकट की थी। इसी से वे उद्विग्न हुए हैं- यह सोचकर उसे दु:ख हुआ। ऐसा असंयम उससे पहले तो कभी नहीं हुआ था। उसने मन-ही-मन तय किया कि अब फिर ऐसी भूल कभी न होगी।

उधर उसी दिन हरानबाबू भी कुछ देर बाद फिर आ पहुँचे। उनका मन भी चंचल हो उठा था। इतने दिन से उनका विश्वास था कि मन-ही-मन सुचरिता उनकी पूजा करती है, और इस पूजा का अर्घ्य और भी संपूर्णता से उनको मिलता अगर अंध-संस्कार के कारण बूढ़े परेशबाबू के प्रति सुचरिता की अंध-भक्ति न होती। परेशबाबू के जीवन में अनक कमियाँ दीखने पर भी सुचरिता मानो उन्हें देवता ही समझती है, इस पर मन-ही-मन हरानबाबू को हँसी भी आती थी तथा खीझ भी होती थी; फिर भी उन्हें आशा थी कि यथा समय मौका पाकर वह इस अत्यधिक भक्ति को ठीक राह पर डाल सकेंगे।

जो हो, जब तक हरानबाबू अपने को सुचरिता की भक्ति का पात्र समझते रहे तब तक उसके छोटे-छोटे कामों और आचरण की भी केवल समालोचन करते रहे और सदा उसे उपदेश देकर अपने ढंग से गढ़ने की कोशिश करते रहे- विवाह के बारे में कोई साफ बात उन्होंने नहीं की। उस दिन सुचरिता की दो-एक बातें सुनकर सहसा जब उनकी समझ में आ गया कि वह उन पर विचार भी करने लगी है, तब से उनके

लिए अपना अविचल गांभीर्य और स्थिरता बनाए रखना दूभर हो गया। इधर सुचरिता से दो-एक बार जो उनकी भेंट हुई है उसमें वह पहले की तरह अपने गौरव को स्वयं अनुभव या प्रकाशित नहीं कर सके हैं, बल्कि सुचरिता के साथ उनकी बातचीत और व्यवहार में कुछ झगड़े का-सा भाव दीख पड़ता रहा है। इसे लेकर वह अकारण ही, या छोटे-छोटे कारण ढूँढ़कर नुक्ताचीनी करते रहे हैं। इस मामले में भी सुचरिता की अविचल उदासीनता से मन-ही-मन उन्हें हार माननी पड़ती है, और घर लौटकर अपनी मान-हानि पर वह पछताते रहे हैं।

जो हो, सुचरिता की श्रध्दाहीनता के दो-एक प्रकट लक्षण देखकर हरानबाबू के लिए अब बहुत समय स्थिर होकर उसके परीक्षक के आसन पर बैठे रहना मुश्किल हो गया। इससे पहले परेशबाबू के घर वह यों बार-बार नहीं आते-जाते थे। कोई यह न समझे कि सुचरिता के प्रेम में वह चंचल हो उठे हैं, इस आशंका से वह सप्ताह में केवल एक बार आते थे और अपनी गरिमा में ऐसे मंडित रहते थे मानो सुचरिता उनकी छात्र हो। लेकिन इधर कुछ दिन से न जाने क्या हुआ है कि कोई भी छोटा-मोटा बहाना लेकर हरानबाबू दिन में एक से अधिक बार भी आए हैं, और उससे भी छोटा बहाना ढूँढ़कर सुचरिता के करीब आकर बातें करने की चेष्टा करते रहे हैं। इससे परेशबाबू को भी दोनों अच्छी तरह पर्यवेक्षण करने का अवसर मिल गया है, और इससे उनका संदेह क्रमश: दृढ़ ही होता गया है।

आज हरानबाबू के आते ही उन्हें अलग बुलाकर वरदासुंदरी ने पूछा, "अच्छा पानू बाबू, सभी लोग कहते हैं कि हमारी सुचरिता से आप विवाह करेंगे लेकिन आपके मुँह से हमने तो कभी कोई बात नहीं सुनी। सचमुच अगर आपका ऐसा अभिप्राय हो तो आप साफ-साफ कह क्यों नहीं देते?"

अब हरानबाबू और देर नहीं कर सके। अब सुचरिता को वह किसी तरह बंधन में कर लें तभी निश्चिंत होंगे- उनके प्रति उसकी भक्ति की, और ब्रह्म-समाज के हित के लिए उसकी योग्यता की परीक्षा फिर कभी की जा सकेगी। वरदासुंदरी से उन्होंने कहा, "कहने को अनावश्यक मानकर ही मैंने नहीं कहा। सुचरिता के अठारह वर्ष पूरे होने की ही इंतज़ार कर रहा था।"

वरदासुंदरी बोलीं, "आप तो ज़रूरत से ज्यादा सोचते हैं। हम लोग तो चौदह वर्ष की उम्र विवाह के लिए काफी समझते हैं।"

उस दिन परेशबाबू चाय के समस्त सुचरिता का व्यवहार देखकर चकित रह गए। बहुत दिनों से सुचरिता के हरानबाबू के लिए इतना जतन और आग्रह नहीं दिखाया था। यहाँ तक कि

वह जब जाने को उठे तब लावण्य की शिल्पकारी का एक नया नमूना दिखाने की बात कहकर सुचरिता ने उनसे और कुछ देर बैठने का अनरोध किया।

परेशबाबू निश्चिंत हो गए। उन्होंने मान लिया कि उनसे समझने में भूल हुई थी। बल्कि मन-ही-मन वह थोड़ा हँसे भी। उन्होंने सोचा कि दोनों में कोई हल्का-फुल्का प्रणय-कलह हुआ था और अब फिर से सुलह हो गई है।

विदा होते समय उस दिन हरानबाबू ने परेशबाबू के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रख दिया। उन्होंने यह भी जता दिया कि इस संबंध में और देर करने की उनकी मंशा नहीं है।

कुछ अचरज करते हुए परेशबाबू ने कहा, "लेकिन आपका तो मत है कि अठारह वर्ष से कम उम्र की लड़की का विवाह करना अनुचित है?बल्कि आपने तो अखबारों में भी ऐसा लिखा है।"

हरानबाबू बोले, "सुचरिता के बारे में वह शर्त लागू नहीं होती। क्योंकि जैसा उसका मन विकसित है वैसा उससे कहीं अधिक उम्र की लड़कियों में भी नहीं पाया जाता।"

शांत दृढ़ता के साथ परेशबाबू ने कहा, "वह होगा, पानू बाबू! लेकिन जब कोई हानि नहीं दीख पड़ती तब आपके मन के अनुसार राधारानी की उम्र पूरी होने तक प्रतीक्षा करना ही प्रथम कर्तव्य है।

अपनी दुर्बलता से साक्षात हो जाने पर लज्जित हरानबाबू ने कहा, "वह अवश्य ही कर्तव्य है। मेरी इतनी इच्छा है कि एक दिन सबको बुलाकर भगवान का नाम लेकर संबंध पक्का कर दिया जाय।"

परेशबाबू ने कहा, "यह तो बहुत अच्छा प्रस्ताव है।"

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय